इच्छा का निरोधकर सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप परिणमन वह तपश्चरणाचार है और उसी शुद्धात्मस्वरूप में अपनी शक्ति को प्रकटकर आचरण परिणमन वह वीर्याचार है। यह निश्चय पंचाचार का लक्षण कहा। अब व्यवहार का लक्षण कहते हैं–निःशंकित को आदि लेकर अष्ट अंगरूप बाह्यदर्शनाचार, शब्द शुद्ध, अर्थ शुद्ध आदि अष्ट प्रकार बाह्य ज्ञानाचार, पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्तिरूप व्यवहार चारित्राचार, अनशनादि बारह तपरूप तपाचार और अपनी शक्ति प्रगटकर मुनिव्रत का आचरण वह व्यवहार वीर्याचार है। यह व्यवहार पंचाचार परम्पराय मोक्ष का कारण है, और निर्मल ज्ञान–दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मतत्त्व उसका यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तथा परद्रव्य की इच्छा का निरोध और निजशक्ति का प्रगट करना ऐसा यह निश्चय पंचाचार साक्षात् मुक्ति का कारण है। ऐसे निश्चय व्यवहाररूप पंचाचारों को आप आचरें और दूसरों को आचरवावें ऐसे आचार्यों को मैं वंदता हूँ। पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नवपदार्थ हैं, उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निजशुद्ध जीवद्रव्य, निजशुद्ध जीवतत्त्व, निज शुद्ध जीवपदार्थ, जो आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है, अन्य सब त्यागने योग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं, तथा शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अभेद रत्नत्रय है, वही निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं, ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ, और शुद्धज्ञान स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व की आराधनारूप वीतराग[१] निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं, उन साधुओं को मैं वंदता हूँ। वीतराग[१] निर्विकल्प समाधि को जो आचरते हैं, कहते हैं, साधते हैं, वे ही साधु हैं। अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये ही पंचपरमेष्ठी वंदने योग्य हैं, ऐसा भावार्थ है।।७।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १४, शुक्रवार,
दिनांक-११-०६-१९७६, गाथा-७, प्रवचन-६

सातवीं गाथा। परमात्मप्रकाश।

---

१. ये पाँचों परमेष्ठी भी जिस वीतरागनिर्विकल्पसमाधि को आचरते हैं, कहते हैं और साधते हैं; तथा जो उपादेयरूप निजशुद्धात्मतत्त्व की साधनेवाली है, ऐसी निर्विकल्प समाधि को ही उपादेय जानो। (यह अर्थ संस्कृत के अनुसार किया गया है।)

७) जे परमप्पु णियंति मुणि परम-समाहि धरेवि।
परमाणंदह कारणिण तिण्णि वि ते वि णवेवि।।७।।

अन्वयार्थ :- आगे भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय, दोनों का आराधक। है न? निश्चय को आराधता है, वहाँ व्यवहार है। उसे भी आराधने का उपचार आता है। है न वह वस्तु? निश्चयरत्नत्रय है, वहाँ व्यवहाररत्नत्रय पूर्ण केवलज्ञानी न हो, उन्हें होता है। केवलज्ञान हुआ, उन्हें व्यवहार नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को व्यवहार नहीं होता।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि और केवली दोनों समान!

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली पूर्ण वीतराग हो गये, इसलिए व्यवहार नहीं और मिथ्यादृष्टि को निश्चय नहीं है, इसलिए व्यवहार नहीं है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। इसमें आयेगा। परम्परा व्यवहार। यह विवाद आया है न कल? व्यवहार को परम्परा मोक्ष का कारण कहा। परन्तु किसे? यह आयेगा, अभी ही आयेगा।

भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... जिसने वर्तमान में निश्चय सम्यग्दर्शन, आनन्द के नाथ को अन्दर में पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु की (लीनता) अर्थात् शान्ति द्वारा जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है। वह सम्यक् निश्चय है, वह वीतरागी पर्याय है और आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान पूर्णानन्द प्रभु का स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन (हुआ है), वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है। वह निश्चयरत्नत्रय का वह भाग है। और स्वरूप में सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप का आराधन करके अन्दर में स्थिर होना। आनन्द में स्थिरता, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान में प्रतीति और जानने में आया, फिर उसमें स्थिर होना। आनन्दस्वरूप भगवान में स्थिर होना, वह चारित्र है। वह निश्चयचारित्र। इसलिए उसे अभेदरत्नत्रय कहा। उसके साथ व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प होता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प / राग, शास्त्र का ज्ञान रागवाला और पंच महाव्रत के परिणाम आदि राग, उसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं। परन्तु (जिसे) निश्चय हो उसे।

अभी विवाद यह है न? व्यवहाररत्नत्रय परम्परा से मोक्ष का कारण है। इसलिए

फिर निश्चय बिना का व्यवहार (मोक्ष का कारण है), यह बात है ही नहीं। ऐसा व्यवहार तो नौवें ग्रैवेयक (गया, वह पहले) अनन्त बार किया है। वह व्यवहार व्यवहाररूप से आराधनेयोग्य नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मदर्शन निर्विकल्पस्वरूप भगवान आत्मा की जिसे वीतरागी पर्याय, वीतरागस्वरूप भगवान, जिनस्वरूपी प्रभु, उसकी श्रद्धा, वीतरागी पर्याय, निर्विकल्पदशा, ऐसी श्रद्धा जिसे प्रगट हुई है, वह निश्चय, उसे व्यवहार का विकल्प होता है। समझ में आया? यह अर्थ करने में विवाद, पक्ष में विवाद पूरा। आहाहा! क्या हो?

निश्चय से तो व्यवहाररत्नत्रय हेय है। परन्तु यहाँ साथ में लेकर दोनों का प्रमाणज्ञान कराया है। अर्थात्? निश्चय स्वभाव का अभेदरत्नत्रय, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। ऐसा कहेंगे। साक्षात् शब्द है। और उसमें व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, है तो विकल्प, परन्तु वह परम्परा मोक्ष का (कारण है)। अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि को वह हेय है परन्तु आये बिना रहता नहीं। इसलिए व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आराधनेयोग्य है, ऐसा व्यवहार से कहा है। समझ में आया? ऐसी बात है। यह पहले इसका अर्थ हुआ। **भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक...** यह इसकी व्याख्या है, इतने शब्द की। आहाहा! पहले भेद लिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले व्यवहार होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है नहीं, साथ में होता है। भाषा ली है न! वरना है क्या? द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा में नहीं? ४७। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** दो प्रकार का निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग, वह ध्यान में प्राप्त होता है। अर्थात् कि स्वभाव जो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द की शक्तिवाला जो तत्त्व प्रभु, उसमें अन्तर्मुख होकर, ध्यान में लेकर जो सम्यग्दर्शन होता है, वह निश्चय है। साथ में राग बाकी रहता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप दिया है। ४७ गाथा। ऐसी बात है, भाई! खींचतान करे तो कहीं तत्त्व तो है, वह रहेगा (बदलेगा नहीं)। आहाहा!

आगे कहेंगे कि त्रिकाल जो भूतार्थ है, भूतार्थ शब्द है न? वह यहाँ टीका में

भूतार्थ लिया है। अर्थ में सत्य लिया है। भूतार्थ ऐसा भगवान आत्मा। जो समयसार की ११वीं गाथा में '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' (कहा)। भगवान पूर्णस्वरूप आनन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु, ऐसा जो भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ अर्थात् सत्य वस्तु मौजूद है। आहाहा! उसका आश्रय लेकर श्रद्धा होती है, वह सम्यग्दर्शन। वह निश्चय और जो भूतार्थ को सत्य कहा है। त्रिकाल वस्तु है, वह सत्य है। पर्यायादि अभूतार्थ कहकर असत्य कहा है। आहाहा! '**ववहारोऽभूदत्थो**' कहा है न? पर्यायमात्र अभूतार्थ है। अभूतार्थ किस प्रकार? निश्चय का आराधन करने को अपना प्रयोजन—सम्यग्दर्शन की सिद्धि करने के लिये स्व का आश्रय लेना, उसमें पर्याय का आश्रय छोड़ना है; इसलिए गौण करके उसे अभूतार्थ कहा है; और त्रिकाली को मुख्य करके भूतार्थ को सत्य कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में भूतार्थ वस्तु त्रिकाल, अनन्त-अनन्त शक्ति के सामर्थ्य का दल, वही भूतार्थ और वह सत्य है। और उस सत्य का आश्रय, वह सम्यग्दर्शन है। पश्चात् पर्याय को अभूतार्थ कहा, पर्याय को अभूतार्थ कहा। विकल्प तो अभूतार्थ है। आहाहा! त्रिकाली मुख्य को निश्चय कहकर; पर्याय को गौण करके व्यवहार कहा है। अभाव करके व्यवहार कहा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। निश्चय और व्यवहार यह यहाँ साथ में लिया है। वहाँ जो मुख्य करके निश्चय और गौण करके व्यवहार (कहा), उसे यहाँ प्रमाणज्ञान कराने के लिये साथ में लिया है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ यह पहले शब्द का अर्थ होता है।

भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... अर्थात् प्रमाणज्ञान से बात की है और जहाँ भूतार्थ, वह सत्य है; पर्याय, वह अभूतार्थ है, यह निश्चय की मुख्यता का आश्रय लेने के लिये पर्याय को गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अब इतना सब सीखना। आहाहा! अरे! जन्म-मरण में दुःखी चौरासी के अवतार (करके)। भवभ्रमण का चक्र सिर पर। अनन्त भव किये। भवसिन्धु—चौरासी के अवतार का महासमुद्र। आहाहा! उसे उल्लंघना है न! यहाँ उल्लंघना है न अब? भाई! चैतन्यसिन्धु भगवान 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ...' एक आयेगा इसमें। शुद्ध-बुद्ध आता है न? शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव। एक का अर्थ रह गया है। उस ओर।

उस ओर देखो। शुद्ध ज्ञानस्वभाव है न? तीसरी लाईन है। उस ओर। है? वहाँ एक शब्द रह गया है। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, ऐसा चाहिए। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। सब जगह आता है। पाठ में ऐसा है, देखो! शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। है? अन्दर में है। आहाहा!

त्रिकाली शुद्ध ज्ञानस्वरूप और एक स्वरूप। यह तो धर्म बात है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! श्रीमद् में ऐसा कहा है न?

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम॥

शुद्ध है। वह प्रभु पवित्र है। बुद्ध है—ज्ञानघन है। चैतन्यघन असंख्य प्रदेशी ले लिया है। और यहाँ तो शुद्ध बुद्ध एक स्वरूपी है, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसे स्वभाव को सत्य कहकर, उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन हो, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह सत्यदर्शन है। और उसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग आता है, वह है तो असत्य दर्शन, परन्तु व्यवहार से सत्य कहकर दोनों का ज्ञान कराया है। अभेदरत्नत्रय के साथ भेद, ऐसा प्रमाण का ज्ञान कराया है। आहाहा!

नयचक्र में तो आता है न कि प्रमाण पूज्य नहीं है। निश्चय पूज्य है। नयचक्र में आता है। क्यों? कि प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता और निश्चय में पर्याय का निषेध आता है। इसलिए वस्तु त्रिकाल है, वह पूज्य है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ दो को साथ में बताया है। इसलिए यह अर्थ करना है जरा। भेदाभेद शब्द पड़ा है न? यह साथ में प्रमाणज्ञान कराया है। समझ में आया? पाठ में तो दो है ही नहीं। गाथा में तो एक ही है। है? '**ये मुनयः परमसमाधि धृत्वा परमात्मानं पश्यन्ति**' बस! पाठ तो यह है। और ये शब्द भी उस संस्कृत का अर्थ किया है। क्या कहा, समझ में आया?

मूल पाठ है न, वह तो प्राकृत है। उसके शब्द यहाँ नहीं लिये। उसकी छाया है न नीचे? उसका यह लिया है। इस शब्दार्थ में। नहीं तो उसमें '**णियंति**' है। '**जे परमप्पु णियंति**' परन्तु छाया में '**परमात्मानं पश्यन्ति**' इसलिए संस्कृत छाया का शब्दार्थ किया है। अन्वयार्थ (किया है)। समझ में आया? यहाँ तो मात्र भेदाभेदरत्नत्रय की व्याख्या चलती है। भेद, ऐसा जो विकल्प है, परन्तु किसे? कि जिसे निर्विकल्प अभेद रत्नत्रय

प्रगट हुआ है उसे। उसे व्यवहार कहकर प्रमाण का ज्ञान कराने के लिये टीकाकार ने यहाँ दोनों को आराधक कहा है। समझ में आया? मूल गाथा में तो एक ही बात है। आहाहा! ऐसे जो आचार्य, उपाध्याय और साधु। आहाहा!

मुमुक्षु : कैसे आचार्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु। यह तो द्रव्यसंग्रह आदि में बहुत जगह आता है। भेदाभेदरत्नत्रय आराधक साधु को आहार-पानी देता है न? आहार-पानी। उस समय भेदाभेदरत्नत्रय लिया है। भाई! द्रव्यसंग्रह है न? उसमें पूरा पृष्ठ ही उतारा है। है इसमें कहीं। भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक को आहार-पानी देता है। आहार-पानी देता है, तब तो विकल्प है। लेता है इसलिए। और उसे भेदाभेदरत्नत्रय का आराधक कहा है। इसलिए अभेदपना वहाँ है, ऐसा। आहार-पानी लेता है, उसे अभेद तो है। आहाहा! वहाँ पृष्ठ उतारा है, हों! बहुत बोल उतारे हैं, द्रव्यसंग्रह में से। परमात्मप्रकाश में है।

यहाँ तो भेदाभेद आया न? पण्डितजी! भेदाभेद आया, इसलिए वह मुनि है, वह आहार लेता है, तब वह भेदाभेद रत्नत्रय का आराधक है। इसलिए कोई ऐसा कहे कि विकल्प के समय अभेदपना नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा की ज्ञान की पर्याय को अन्तर में झुकान से जो सत्य का आश्रय हुआ। आश्रय का अर्थ अन्दर ढला है न, इसलिए उसे निश्चय सम्यग्दर्शन आनन्द की पर्याय के अनुभवसहित जो दशा हुई, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन अभेद कहते हैं। ऐसे ज्ञान अन्दर में स्वसंवेदनज्ञान होने से आनन्द का साथ लेकर ज्ञान हुआ, उसे निश्चय सम्यग्ज्ञान अर्थात् निश्चय अभेदरत्नत्रय की अभेद निश्चय ज्ञान कहते हैं। आहाहा! और निश्चयस्वरूप जो आनन्दस्वरूप भगवान, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहाहा! शकरकन्द का कहा नहीं था? शकरकन्द होता है न? क्या कहते हैं? शकरकन्द। वह शकरकन्द होता है न, शकरकन्द? ऊपर की लाल छाल के अतिरिक्त वह शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का वह पिण्ड है। एक लाल छाल को लक्ष्य में न ले। आहाहा!

मुमुक्षु : इस प्रमाण?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रमाण आत्मा। शकरकन्द अर्थात् मिठास का / आनन्द का पिण्ड है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प की लाल छाल लक्ष्य में न लो तो।

यहाँ तो भेद का ज्ञान कराया है। अभेद और भेद होता है न? निश्चय ही अकेला है, ऐसा नहीं। व्यवहार है न? 'जह जीणो मज्जन्तु जह' व्यवहार न छोड़ने का अर्थ? व्यवहार है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार आश्रय करनेयोग्य है या उसके आश्रय से धर्म होगा। ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह विरोध बहुत आता है, इसलिए अधिक स्पष्टीकरण होता है। रात्रि में कहा था न? आहाहा! भगवान! मार्ग तो यह है, भाई! किसी के घर का—कल्पना का नहीं। यह तो स्वभाव के घर का है। आहाहा!

मुमुक्षु : मत छोड़ो....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा इसका अर्थ है। निश्चय है और व्यवहार भी है। परन्तु निश्चय है, वह आश्रय करनेयोग्य है; व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है। यह वस्तु ११ और १२ (समयसार)। ११-१२ गाथा। वस्तु चारों ओर मिलानवाली सन्धि है।

यहाँ **भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक जो आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा! योगीन्द्रदेव कहते हैं, ऐसे को नमस्कार करता हूँ। स्वयं मुनि हैं, आचार्य हैं। तथापि ऐसे जो अभेदस्वरूप आनन्द के नाथ को आराधते हैं, बीच में विकल्प आया है, उसका प्रमाण ज्ञान कराने को आराधते हैं, ऐसा कहने में आया है। ऐसे **जो मुनि...** पाठ में तो एक ही बात आयेगी। टीकाकार ने अन्दर से दो (अर्थ) निकाले हैं।

परमसमाधि को धारण करके... आहाहा! जो कोई मुनि धर्मात्मा आचार्य, उपाध्याय और साधु। तीनों को मुनि लेकर बात की है यहाँ। **परमसमाधि को धारण करके सम्यग्ज्ञानकर...** आहाहा! अन्तर ज्ञायकस्वभाव तो परमसमाधि अर्थात् एकाग्रता है। विकल्प को भी एक ओर दूर करके। दूर करके, यह बात यहाँ नहीं। परन्तु भगवान निर्विकल्प चैतन्यदल प्रभु है, उसका समाधि द्वारा सम्यग्ज्ञान करके, ऐसा कहा है। अन्तर वीतरागी पर्याय द्वारा सम्यग्ज्ञान करके। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है, भाई!

वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

क्या कहा? **परमसमाधि को 'धृत्वा' धारण करके सम्यग्ज्ञान कर परमात्मा को देखते हैं।** है? परमसमाधि धारण कर अन्दर में आनन्दस्वरूप शुद्ध निर्विकल्पदशा को धारण करके... आहाहा! और यह परमात्मा अर्थात् स्वयं स्वरूप भगवान, शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन जो अखण्ड प्रभु, उसे जो अनुभव करता है। पश्यन्ति का अर्थ अनुभव करता है। पाठ में नियन्ति है। (संस्कृत) छाया में पश्यन्ति है। अर्थ में उसे अनुभव करता है, ऐसा है। देखता है अर्थात् अनुभव करता है। आहाहा!

किसलिए 'परमानंदस्य कारणेन' रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न हुए... आहाहा! **परमसुख के रस का अनुभव करने के लिये...** आहाहा! रागादि विकल्परहित परमसमाधि। परम आनन्द। समाधि अर्थात् वे बाबा कहें समाधि, वह यह नहीं। लोगस्स में भी आता है, नहीं? 'समाहिवरमुत्तं दिंतु'। वह समाधि आत्मा का आनन्द। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प, व्याधि अर्थात् शरीर की रोग दशा, उपाधि अर्थात् संयोगों का सम्बन्ध। इन तीन से रहित। उपाधि, व्याधि और आधिरहित, वह समाधि। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या सब। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ के घर में जाना है, बापू! वह मार्ग कैसा है! आहाहा! और सर्वज्ञ प्राप्ति के लिये का पंथ है। समझ में आया? अर्थात् कि मोक्ष की प्राप्ति। सर्वज्ञपना अर्थात् मोक्ष। उसकी प्राप्ति का यह पंथ है। आहाहा!

इस पंथ में कहते हैं कि **रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न हुए...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! उससे **उत्पन्न हुए परमसुख के रस का अनुभव...** परम अतीन्द्रिय आनन्द के रस का अनुभव। आहाहा! लो! वे रसगुल्ले नहीं आते तुम्हारे दूध के? यह आनन्द के रस का रसगुल्ला आत्मा है। आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! पर्याय में **रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... तीन कषाय का (अभाव हुआ है)। यहाँ मुनि की बात है न? तीन कषाय के अभाव की समाधि। आहाहा! उससे **उत्पन्न हुए परमसुख के रस का अनुभव...** परम आनन्द के रस का वेदन। आहाहा! **करने के लिये उन तीनों आचार्य, उपाध्याय,**

साधुओं को... अर्थात् मेरे परम आनन्द के रस के लिये मैं तीन को वन्दन करता हूँ, ऐसा कहते हैं। तद् गुण लब्धये। आता है न? मैं मेरे निर्विकल्प आनन्द के अनुभव के लिये तीन को वन्दन करता हूँ। है? '**त्रीन् अपि नत्वा**' किसलिए? कि '**परमानन्दस्य कारणेन**' ऐसा। परमानन्दरूपी आनन्द के रस को लेने के लिये... आहाहा! मैं तीन—आचार्य, उपाध्याय, साधु को वन्दन करता हूँ। है तो विकल्प परन्तु अन्तर स्वरूप—सन्मुख का झुकाव है न, वह परमानन्द के रस का वेदन है। जैसे उस टीका में कहा था, वैसा शब्द है। आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा, मुझे यह टीका करते हुए, मेरा भगवान तो शुद्ध चैतन्यघन है परन्तु पर्याय में अशुद्धता अनादि की है। मुनि हुए हैं आचार्य, उन्हें अभी अशुद्धता तो है न! वह अनादि की अशुद्धता है। वह अशुद्धता है, कलुषता है, मलिनता है। आहाहा! वह यह टीका करते हुए मेरी मलिनता का नाश होओ। इसका अर्थ? टीका के काल में मेरा जोर द्रव्य के ऊपर है। आहाहा! यह महिलायें पानी का हण्डा (बर्तन) नहीं उठातीं? दो-तीन उठाते हैं। और रास्ते में सखी मिले तो बातें करे, वह करे, परन्तु सब लक्ष्य वहाँ है। बातें करे, ऐसा कहे, कैसे हैं, अमुक करे। लक्ष्य वहाँ है। आहाहा! इसी प्रकार टीका के समय भी लक्ष्य का जोर द्रव्य के ऊपर है। आहाहा! इसी प्रकार यह नमस्कार करते समय भी... आहाहा! ऐसा आता है कहीं, भजन में आता है। 'नटवा नट नाचे...' ऐसा आता है। आनन्दघनजी में आता है।

'**परमानन्दस्य कारणेन**' आहाहा! मेरे परमानन्द के कारण से... आहाहा! मेरा प्रभु परमानन्द का नाथ प्रभु, उसके सेवन से, समाधि से उत्पन्न हुआ परमानन्द, ऐसे परमानन्द के कारण से मैं आचार्य, उपाध्याय, साधु को नमस्कार करता हूँ। अब कोई इसमें से ऐसा निकाले कि देखो! पर को नमस्कार करते हैं, इसलिए पर में आनन्द मिलता है। क्या अपेक्षा है? बापू!

मुमुक्षु : यह तो पर की ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से बात? (समयसार की) टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कहते हैं कि मैंने यह टीका की ही नहीं। मैं टीका में आया नहीं।

टीका का विकल्प है, वहाँ भी मैं आया नहीं। मैं तो मेरे स्वरूप में हूँ। आता है? आहाहा! इस प्रकार से बात करके यह बात चलती है। आहाहा! मेरे स्वरूप में रहकर, यह विकल्प उठा है। परन्तु मेरा लक्ष्य तो स्वरूप की प्राप्ति विशेष हो, वह मेरा लक्ष्य है। समझ में आया? अरे... अरे! वांचन में फेरफार करे तो आड़ा-टेढ़ा तो सब फेरफार हो जाता है। मार्ग की पद्धति है, तत्प्रमाण होना चाहिए।

एक ओर भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रमाण पूज्य नहीं है। क्योंकि (उसमें) पर्याय का निषेध नहीं आता। एक ओर भेदाभेद रत्नत्रय को पूज्य कहे। ऐई! समझ में आया? आराधक कहा न? किस अपेक्षा से? आहाहा! परमात्मा का विरह पड़ा, केवलज्ञान की शक्ति प्रगट करने की रही नहीं। यह सब झगड़े खड़े हुए। मार्ग तो यह है।

मूल योगीन्द्रदेव ने भेदाभेदरत्नत्रय नहीं लिया परन्तु इसमें आ जाता है। क्या? कि मैं यह मेरे परमान्द के कारण से नमस्कार करता हूँ। विकल्प तो है। परन्तु मेरा ध्येय विकल्प और पर के ऊपर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मैं आत्मा अखण्ड आनन्द का नाथ, जैसे शकरकन्द है। वह शक्कर की अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड—दल है। मेरा नाथ परम आनन्द का दलवाला आत्मा है। आहाहा! उसमें से परमानन्द की प्राप्ति के कारण मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भाई! इसमें तो जरा गहराई देखकर अभ्यास चाहिए थोड़ा। ऐसे के ऐसे अद्धर से चल निकले, ऐसा चले—ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा! भेदाभेद क्या और प्रमाण क्या और निश्चय क्या तथा व्यवहार क्या?

मुमुक्षु : यह तो आ गया। भेद कहो या व्यवहार कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! अभेद अर्थात् क्या परन्तु वापस? स्व स्वभाव का आश्रय लेकर जो निर्मलदशा प्रगट हो, उसे अभेद कहा जाता है और पर के आश्रय में विकल्प उठे, उसे व्यवहार कहने में आता है। पराश्रितो व्यवहार, स्वाश्रितो निश्चय। देखो न! सिद्धान्त तो देखो! परन्तु व्यवहार होता है और यहाँ वन्दन करने का भी व्यवहार होता है। उसमें व्यवहार होता है, भेदाभेद रत्नत्रयवाला अभी। यहाँ वन्दन करनेवाले को विकल्प उठा है। आहाहा! परन्तु मेरा हेतु तो परमानन्द के कारण से है। आहाहा! मुझे

तो स्वभाव सन्मुख ढलकर विशेष परमानन्द हो, यह मेरा हेतु है। आहाहा! यह बात कहाँ है? दिगम्बर सन्तों के बिना यह बात कहाँ है, बापू!

'परमानन्दस्य कारणेन' आहाहा! **'तान् अपि'** अर्थात् उन्हें, **तीनों—आचार्य, उपाध्याय, साधुओं को भी मैं नमस्कार करके परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ।** लो! अब। सातवीं गाथा हुई न। सात तक हुई। आहाहा! पहली गाथा में भूतकाल के अनन्त सिद्धों को नमस्कार किया। दूसरी गाथा में भविष्य में अनन्त होंगे, उन्हें किया। तीसरी में भगवान अरिहन्त विराजते हैं, उन्हें नमस्कार किया। चौथी में आत्मा में निवास है, उन्हें नमस्कार किया। आहाहा! पाँचवीं गाथा में अरिहन्त के ज्ञान आदि को नमस्कार किया। ऐसा किया न? केवलज्ञानादि छठवीं में आया। निवास का पाँचवीं में। चौथी में महामुनि को। चौथी गाथा में महामुनि होकर मोक्ष पधारे उन्हें (नमस्कार) किया। पाँचवीं में अपना वास है, उन्हें किया। स्वरूप का वास है। लोकालोक को जानने पर भी स्वरूप में है। शिखर (लोकाग्र) पर होने पर भी... आहाहा! छठवीं गाथा में ज्ञान की पर्याय अरिहन्त को नमस्कार किया। सातवीं गाथा में तीन रह गये थे, उन्हें किया। अर्थात् सिद्ध, अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु—पाँचों आ गये। आहाहा!

अब नय उठाते हैं। देखो! उसरूप से सुधारा था न अनुपचरित का? उपचरित नहीं, अनुपचरित। यह आया, देखो! **अनुपचरित अर्थात् जो उपचरित नहीं है, इसी से अनादि सम्बन्ध है, परन्तु असद्भूत (मिथ्या) है,...** देखा! वहाँ संस्कृत में उपचरित था न? अनुपचरित चाहिए। अपने सुधारा है।

मुमुक्षु : पहली में तो अनुपचरित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो स्पष्ट है। इसमें तो अनुपचरित है।

इसी से अनादि सम्बन्ध है,... कौन? जड़कर्म। यह तो स्पष्ट है। असद्भूत है। जड़ कर्म आत्मा में नहीं। **ऐसा व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध होता है,...** देखो! ऐसे व्यवहार से सम्बन्ध है। झूठे असत्य नय से। आहाहा! **उससे रहित...** उससे रहित परमात्मा... आहाहा! **और अशुद्ध निश्चयनयकर रागादि का सम्बन्ध है,...** देखो! वहाँ टालने की अपेक्षा से बात की थी। कर्मकलंक। यहाँ सम्बन्ध की

अपेक्षा से बात है। क्या कहा, समझ में आया? कर्म ईंधन को जलाने में कर्म और भावकर्म को जलाना, वह अशुद्धनिश्चय से; द्रव्यकर्म को अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से जलाने की बात की थी। यहाँ सम्बन्ध की बात करते हैं कि जड़कर्म का सम्बन्ध जीव को अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से है।

और अशुद्ध निश्चयनयकर रागादि का सम्बन्ध है,... पुण्य और पाप का आत्मा को पर्याय में सम्बन्ध है। वह अशुद्ध निश्चय (से है)। क्योंकि उसकी पर्याय में है। इससे अशुद्ध निश्चयनय से विकार को और भगवान आत्मा को सम्बन्ध है। आहाहा! भाषा तो सादी आती है। जरा फिर दिमाग तो देना पड़े न इसे! आहाहा! ऐई! बाबूभाई! कभी बहियाँ फिराने से निवृत्त कहाँ है? यह दो लड़के बड़े हुए हैं अब। तो भी अभी निवृत्ति नहीं मिली?

मुमुक्षु : अभी निवृत्त होकर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी आठ दिन आये थे। इनकी माँ गुजर गयी। बड़ी माँ। वहाँ गये तो कहे, मेरी बड़ी माँ को मांगलिक सुनाओ। ऊपर आओ। फिर ऊपर गये थे। बाबूभाई कहे। नहीं तो ऊपर मंजिल पर चढ़ते नहीं परन्तु अब बाबूभाई कहे, मेरी बड़ी माँ को सुनना है। आहाहा! ऐसी बातें बाहर की है, बापू! यह अभ्यास चाहिए, भाई! अरे रे! जन्म-मरण एक भव में अनन्त भव के चक्र को नाश करना है। आहाहा! वरना अनन्त भवचक्र सिर पर खड़ा है। अनन्त भवसिन्धु चक्र, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व है, तब तक अनन्त भवचक्र की डांग सिर पर खड़ी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि कर्म का जीव को सम्बन्ध किस नय से कहना? कि उपचाररहित, नजदीक है, वह अनुपचार व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! असद्भूतव्यवहार से। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुपचरित का अर्थ अनादि का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह सम्बन्ध तो अनादि का है न! अनादि का है। अभी है कहो या अनादि का है कहो। आहाहा!

उससे रहित... आत्मा की श्रद्धा की बात करते हैं। **अशुद्ध निश्चयनयकर**

रागादि का सम्बन्ध है,... आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय यहाँ जो कहा भेदरत्नत्रय, इसका सम्बन्ध अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! **उससे तथा मतिज्ञानादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित...** वह मतिज्ञान विभाव गुण का सम्बन्ध भी अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! दो। **और नर-नारकादि चतुर्गतिरूप विभावपर्यायों से रहित...** वह भी अशुद्धनिश्चय से है। गति है न? नर-नारकादि चार गतियाँ। वह विभावपर्याय है, अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! तीनों को अशुद्ध में डाला है। पुण्य-पाप के भाव को, मतिज्ञान आदि विभाव को और यह नर-नारकादि व्यंजनपर्याय को। उदयभाव गति का, अशुद्धनिश्चय से। भाई! यह तो बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये। यह तो... आहाहा!

मुमुक्षु : अशुद्ध निश्चयनय कहो, असद्भूतव्यवहारनय कहो परन्तु झूठी कैसे कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठी है। कर्म झूठा है। अशुद्ध निश्चयनय झूठा नहीं। अशुद्ध निश्चय है, वह पर्याय में सत् है। और कर्म तो असद्भूत है। आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! आचार्यों ने काम किया है न! आहाहा!

मुमुक्षु : लोकोत्तर....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, बापू! क्या हो? केवलज्ञानी के पाट पर बैठकर उनका मार्ग कहना, भाई! करोड़पति की दुकान पर बैठकर घांची काम करे? उसका मुनिम दूसरी जाति का हो; इसी प्रकार परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ का कहा हुआ मार्ग, उसे कहनेवाली की बहुत जवाबदारी है। समझ में आया? एक काना मात्र भी अन्तर पड़ जाये तो पूरा तत्त्व बदल जाता है और वह किसके लिये? अपने लिये है या पर के लिये है? आहाहा! आहाहा! हित हेतु, ऐसा आया है। जिनादेश जाता, नहीं? उसमें अन्तिम आया है।

'जैनवाणी जैनवाणी सुन ही जे जीव, जे आगम रुचि धरे, जे प्रतीति मन में आनही, अवधार ही जे पुरुष समरथ पद अर्थ जानहि। जे हित हेतु बनारसी दे ही धर्म उपदेश।' हितहेतु। आहाहा! 'ते सब पाव ही परमसुख तज संसारक्लेश।' बनारसीदास का है। प्रणव मन्त्र। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' यह है इसमें। है न?

'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविकजीव संशय निवारे।' आहाहा! भगवान के श्रीमुख से ॐ ध्वनि खिरी। सन्त, गणधर—सन्तों के नायक, उन्होंने आगम रचे और 'भविक जीव संशय निवारे।' उस आगम को सुनकर मिथ्यात्व का नाश करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस कलश में नहीं आया था? कि कर्म के संग में मरणतुल्य हो गया है। कलश में आया है। कलश। 'कर्म के संग में...' नहीं आया? देखो!

जैसे ढँकी हुई निधि प्रगट की जाती है, उसी प्रकार भगवान निधि अन्दर है... आहाहा! पुण्य और पाप की आड़ में यह प्रभु ढँक गया है। आहाहा! **ढँकी हुई अग्नि प्रगट की जाती है, उसी प्रकार जीवद्रव्य प्रगट ही है।** आहाहा! जैसे निधि प्रगअ है, वैसे चैतन्यनिधि अन्दर प्रगट है। आहाहा! **परन्तु कर्मसंयोग से ढँका हुआ होने से...** कर्म के निमित्त के संग में विकारी परिणाम से... आहाहा! मरण को प्राप्त हो रहा था। आहाहा! अर्थात् कि है नहीं, ऐसा प्राप्त हो रहा था। आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय के माहात्म्य में और पुण्य-पाप के माहात्म्य में वह प्रभु है नहीं, ऐसा उसे हो गया था। आहाहा! २८वें कलश में है। आहाहा!

भगवान निधान अन्दर पड़ा है। वह आता है न श्वेताम्बर में? उस आबू में नहीं गये? 'वस्तुपाल—तेजपाल'। 'वस्तुपाल-तेजपाल' थे श्वेताम्बर। पैसा बहुत। फिर यात्रा करने निकले थे। वे पैसे बहुत थे, उन्हें गाड़ने गये। नळपुर में या उसमें गाड़ने गये, वहाँ चरु (कलश) निकला। करोड़ों रुपये का चरु निकला। पत्नी-स्त्री कहती है, तुम क्या गाड़ते हो? कदम-कदम पर तुम्हारे निधान और अब गाड़ना किसलिये तुम्हारे? बहुत खर्च किया है न आबू में? साढ़े तीन करोड़ का स्त्री के नाम का गोखला बनाया है। साढ़े तीन करोड़ का। 'वस्तुपाल-तेजपाल'। इसी प्रकार कहते हैं कि तुम्हारे पास यह लक्ष्मी है, यात्रा करने निकले। गाड़ने गये वहाँ चरु निकला। अब तुम्हारे गाड़कर क्या काम है? आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प में दब गया है। वह प्रगट आनन्द कानाथ अन्दर पड़ा है। आहाहा! उसे अब खोल। किससे? मरण को प्राप्त हो रहा है। अरे! 'है', वह 'नहीं' ऐसा हो गया था। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अस्ति धाम

प्रभु है, वह 'नहीं' ऐसा हो गया था। परन्तु भ्रान्ति, परमगुरु श्री तीर्थंकर का उपदेश सुनने से मिटती है। संशय निवारे कहा न उसमें? जिनादेश। चार ओर का मिलान ऐसा है न! आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी, उसका भाव जहाँ कान में पड़ता है... समझ में आया? यह संशय नाश हो जाता है। यह त्रिलोक के नाथ की वाणी का निमित्त है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसकी वाणी में वीतरागता उत्पन्न हो, वही बात भगवान की वाणी में आती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ दो बात की हैं कि कर्म का और नोकर्म का सम्बन्ध असद्भूतव्यवहारनय से अनुपचरित से है। और राग का सम्बन्ध, पुण्य-पाप के विकल्प का सम्बन्ध; यह भेदरत्नत्रय है, वह भी विकल्प है, उसका सम्बन्ध और मतिज्ञानादि विभावगुण, मतिज्ञानादि पर्याय है , उसका भी सम्बन्ध। यह कहीं कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। आहाहा! मतिज्ञानादि विभावगुण, यह पर्याय। इसका सम्बन्ध अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! और नर-नारकादि चतुर्गति की विभावपर्याय, वह भी अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध है। इनसे— तीनों से प्रभु रहित है। कर्म, नोकर्म से रहित, मतिज्ञानादि विभावपर्याय से रहित, चार गति की पर्याय से रहित।

ऐसा जो चिदानन्दचिद्रूप... ऐसा चिदानन्द चिद्रूप, ज्ञानानन्द चिद्रूप। आहाहा! ऐसी बात। **चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्डस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व है, वही सत्य है।** यह भूतार्थ लिया। पाठ में भूतार्थ है। देखो! '**शुद्धात्मतत्त्वं तदेव भूतार्थं**' संस्कृत में है अन्दर में। भूतार्थ है। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठवीं लाईन। आठवीं लाईन। अन्यत्र है। होगा। समझ में आया? क्या कहा? इस भगवान आत्मा को कर्म और शरीर का (सम्बन्ध) अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है। उससे प्रभु रहित है। अशुद्ध निश्चय से पुण्य-पाप के भाव का सम्बन्ध, वह अशुद्धनिश्चय से कहा जाता है। उससे प्रभु रहित है। और मतिज्ञानादि विभाव से रहित है और चारगति की व्यंजनपर्याय— उदय जो गति। गतियोग, हों! शरीर नहीं। उससे भी रहित है। वह भी अशुद्धनिश्चयनय में जाता है।

अब शुद्धनय का विषय। आहाहा! है? **चिदानन्दचिद्रूप...** आहाहा! ज्ञानानन्द ज्ञानरूप। ज्ञानानन्द ज्ञानरूप, ऐसा लिया। भगवान आत्मा ज्ञान के आनन्दवाला प्रभु ज्ञानरूप

है। ज्ञान के आनन्दवाला प्रभु ज्ञानरूप है। आहाहा! यह दुनिया बाहर में आनन्द-सुख खोजती है न? विषय में और भोग में, पैसे में और धूल में। मूढ है, कहते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! तू ज्ञानानन्द चिद्रूप है न! आहाहा! तुझमें आनन्द तो ठसाठस भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा!

चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव... एक अखण्ड पर्याय बिना की चीज़ पूरी। आहाहा! मतिज्ञान के विभाव से रहित कही न? मतिज्ञान आदि चार ज्ञान की पर्याय को अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध कहा है। आहाहा! समझ में आया? जैसे राग का सम्बन्ध वस्तु को अशुद्ध निश्चय से है। उसी प्रकार मतिज्ञानादि पर्याय जो विभाव चार ज्ञान, हों! आहाहा! वह सम्बन्ध कायम नहीं रहता। वह तो अशुद्ध निश्चय का सम्बन्ध है। आहाहा! उससे प्रभु अन्दर रहित है। आहाहा! चार गति के भाव से भी प्रभु रहित है। सम्बन्ध है, वह चार गति का अशुद्ध निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा जो चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्डस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व (वस्तु) है, वही सत्य है। वह भूतार्थ है। यह ११वीं गाथा का। आहाहा! '**ववहारोऽभूदत्थो**' उसमें यह सब आ गया। राग, मति आदि की पर्याय और गति, यह सब अभूतार्थ है। वहाँ अभूतार्थ कहा है, वह गौण करके कहा है। समझ में आया? त्रिकाल को मुख्य करके निश्चय कहकर। यहाँ भी त्रिकाल और सत्य जो वस्तु है, भूतार्थ, वह सत्य है। यह राग का सम्बन्ध, कर्म का सम्बन्ध या मतिज्ञान का सम्बन्ध या गति का (सम्बन्ध), इस बिना की यह चीज़ है। आहाहा! और यह सत्य है। आहाहा! भूतार्थ है न? '**तदेव भूतार्थं परमार्थरूपसमय-सारशब्द**' आहाहा!

भाई! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा! नियमसार में कहा है न? ओहो! दिव्यध्वनि का सुनना सौभाग्य। सौभाग्य हो, उस जीव को मिलता है। और वह भी दिव्यध्वनि कैसी वहाँ लिखी है? परम आनन्द सन्धि। आनन्दसन्धि वाणी, हों! निमित्तरूप से। आहाहा! वाणी को आनन्द की देनेवाली आनन्दस्वरूप कहा है। वाचक शब्द हैं न, इसलिए। आनन्द को बतलानेवाली है न? चिदानन्द चिद्रूप प्रभु को बतलानेवाली वाणी को आनन्द की देनेवाली कहा है। आनन्दरूप कहा है। आहाहा! उपचार से है। आहाहा! ऐसी वाणी और उपदेश अब। उसमें और

ऐकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय तो कहीं रह गया। भरतभाई! ... यह करे न, भक्ति से धर्म होता है, यह सब उड़ गया इसमें तो।

यहाँ तो मतिज्ञानादि का सम्बन्ध है, सम्यग्ज्ञान, उसका भी सम्बन्ध जीव के त्रिकाल को अशुद्ध निश्चयनय से है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय है न? विभावगुण कहा है, उसे—मतिज्ञान को। इतना सम्बन्ध है न कर्म का, इतना थोड़ा। आहाहा! भगवान आत्मा चिदानन्द चिद्रूप, चिदानन्द चिद्रूप, उसे यह मतिज्ञान का सम्बन्ध भी अशुद्ध निश्चय से है। क्योंकि वह निकल जाता है और छूट जाता है। आहाहा! देखो तो यह वाणी! जैसा राग का सम्बन्ध, दया, दान के विकल्प का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चय से है। आहाहा! मतिज्ञान को शुद्ध निश्चय में डाला। आहाहा! और गति। चारों ही। आहाहा!

ऐसे अशुद्ध निश्चय से रहित प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप भगवान... आहाहा! एक अखण्ड स्वभाव ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, यह सत् है। वह असत् कहा। आहाहा! समझ में आया? वह कायम रहनेवाला नहीं, इसलिए असत् कहा। आहाहा! **उसी को परमार्थरूप समयसार कहना चाहिए।** आहाहा! त्रिकाल। त्रिकाल भूतार्थ प्रभु, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के ज्ञानवाला ज्ञान कहते हैं। आहाहा! अकेला ज्ञान नहीं। ज्ञानमात्र आत्मा कहा है न? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान, ज्ञान के आनन्दवाला ज्ञान। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली प्रभु, वह सत्य है। उसे परमार्थ समयसार कहते हैं। यह पर्याय की बात नहीं। त्रिकाली को समयसार कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? विकाररहित, मतिज्ञानादि विभाव से रहित, चार गति से रहित परमसत्य, उसे सत्य कहते हैं, भूतार्थ कहते हैं, उसे समयसार कहते हैं। आहाहा!

वही सब प्रकार आराधने योग्य है। लो! वह सब प्रकार से प्रभु त्रिकाली आराधनेयोग्य है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१९७६ के वर्ष में यह प्रवचन नहीं उपलब्ध होने से १९६५ के वर्ष का प्रवचन लिया गया है।